

पूँजी के रूप

— ♦ पीयरे बोर्ड्यू

इस प्रसिद्ध लेकिन अपेक्षाकृत अमूर्त लेख में पीयरे बोर्ड्यू ने पूँजी के विविध रूपों की चर्चा की है। आर्थिक पूँजी के साथ ही साथ सांस्कृतिक और सामाजिक पूँजी भी असर डालती हैं। समकालीन समाजों में वे खासतौर से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि वे लोगों को लाभ संचित करने और अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करने में मददगार होती हैं। जब हम पूँजी के इन स्वरूपों को पहचानने लगते हैं तब हम समाज में लाभ और हानि की स्थितियों के नए स्वरूपों को देखना शुरू कर देते हैं।

सामाजिक जगत एक संचित इतिहास है और अगर हम इसे परस्पर स्थानापन्न कर्णों की तरह दिखाई देने वाले वाहकों (agents) के बीच क्षणिक यांत्रिक साम्यों (equilibria) की एक विच्छिन्न शृंखला में सीमित नहीं कर देना चाहते हैं तो हमें पूँजी और उसके साथ-साथ संचय की अवधारणा का भी लाजिमी तौर पर सहारा लेना होगा और उसके सारे प्रभावों की पड़ताल करनी होगी। पूँजी संचित श्रम है (भौतिक रूप में या “समाविष्ट” (incorporated), मूर्त (embodied) रूप में) जिसका जब किसी कर्ता या कर्ताओं के समूह द्वारा निजी और फलस्वरूप खालिस व्यक्तिगत हस्तगतकरण कर लिया जाता है तो वह उनके लिए मूर्त या जीवित श्रम के रूप में सामाजिक ऊर्जा के हस्तगतकरण का साधन बन जाती है। यह *vis insita* यानी वस्तुनिष्ठ या मनोगत संरचनाओं पर उत्कीर्ण शक्ति है; परंतु साथ ही यह *lex insita* यानी सामाजिक जगत की सर्वव्यपापी नियमितताओं के नीचे निहित सिद्धांत भी है। यही वह चीज है जिसके चलते समाज का खेल- और जिसमें आर्थिक खेल भी शामिल है- हर पल किसी चमत्कार की गुंजाइश पर टिका तीर-तुक्के का खेल नहीं रहता। जिस कैसिनो में हर खिलाड़ी के पास पलक झपकते बहुत सारा पैसा जीत लेने की संभावना रहती है और इसलिए जो जीतने वाले की सामाजिक हैसियत को लगभग तत्क्षण बदल डालता है, और जिसके पिछले पासे में जीता गया दांव अगले पासे के साथ गंवाया भी जा सकता है, ऐसा केसीनो/जुआ दोषरहित प्रतिस्पर्धा या अवसरों की दोषरहित समानता के इस काल्पनिक जगत की बड़ी सटीक तस्वीर है। यह एक ऐसा जगत है जिसमें कोई त्वरण नहीं है, जहां कोई संचय नहीं है, जहां विरासत या पुश्तैनी संपत्ति नहीं है, जिसमें हर पल पिछले पल से पूरी तरह आजाद रहता है, जहां हर सिपाही के पास सेनापति का ध्वजदंड होता है, जहां हर पुरस्कार हरेक की पहुंच के भीतर होता है और जिसके सहारे कोई भी व्यक्ति किसी भी क्षण कुछ भी बनने की उम्मीद रख सकता है। पूँजी, जो कि अपने वस्तुकृत या मूर्त रूप में संचय के लिए समय लेती है और मुनाफा पैदा करने और यथारूप अथवा विस्तृत रूप में अपने पुनरुत्पादन

की संभावना से लैस होती है, उसके भीतर यथारूप कायम रहने की एक प्रवृत्ति होती है। यह पूंजी चीजों की वस्तुनिष्ठता में उत्कीर्ण एक ऐसा बल है जिसके चलते कोई चीज समान रूप से संभव या असंभव नहीं रह जाती है। और, किसी भी क्षण में पूंजी की विभिन्न किस्मों और उप-किस्मों के वितरण की संरचना सामाजिक जगत की सर्वव्यापी संरचना, यानी उस जगत के ठोस यथार्थ में उत्कीर्ण उन अवरोधों को निरूपित करती है जो उसके व्यवहारों की सफलता को निर्धारित करते हुए उसके कार्य संपादन को स्थायी रूप में नियंत्रित करते हैं। जब तक आप पूंजी को केवल आर्थिक सिद्धांत द्वारा स्वीकृत रूप के बजाय उसके सारे रूपों में पुनः चिह्नित नहीं करते तब तक आप सामाजिक जगत की संरचना व क्रियाकलापों को नहीं समझ सकते। आर्थिक सिद्धांत ने अपने ऊपर व्यवहारों के संकुचन की परिभाषा को स्थापित होने की छूट दे दी है जो कि पूंजीवाद का ऐतिहासिक आविष्कार है। इसके चलते विनिमयों के जगत को वस्तुनिष्ठ और मनोगत रूप से मुनाफे को अधिकतम सीमा तक बढ़ाते जाने की ओर केंद्रित यानी (आर्थिक तौर पर) स्वहित केंद्रित (self-interested) खालिस वाणिज्यिक विनिमयों तक संकुचित करके उसने बाकी प्रकार के विनिमयों को निहित रूप से गैर-आर्थिक और फलस्वरूप रुचिरहित (disinterested) घोषित कर दिया है। उसने विनिमय के उन रूपों को विशेष रूप से रुचिरहित परिभाषित किया है जो काया बदल (transubstantiation) सकते हैं और जिनके जरिए पूंजी के सर्वाधिक भौतिक रूप- ऐसे रूप जो संकुचित अर्थ में आर्थिक होते हैं- खुद को सांस्कृतिक पूंजी या सामाजिक पूंजी के अभौतिक रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं और अभौतिक रूप अपने-आपको सांस्कृतिक पूंजी या सामाजिक पूंजी के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। आर्थिक सिद्धांत में रुचि या हित को जिस तरह संकुचित अर्थ में देखा जाता है, वह अपने नकारात्मक समकक्ष यानी रुचिहीन आयाम को पैदा किए बिना अस्तित्व में नहीं आ सकता। व्यवहारों की जिस श्रेणी का मकसद केवल मौद्रिक लाभ को बढ़ाना होता है, उसको इस रूप में तब तक परिभाषित नहीं किया जा सकता जब तक कि उद्देश्यरहित सांस्कृतिक या कलात्मक व्यवहारों की अंतिमता या उनके उत्पादों की रचना नहीं की जाएगी; दोहरी प्रविष्टि लेखांकन प्रणाली से लैस बुर्जुवा पुरुष का जगत कला-की-खातिर-कला और विशुद्ध सिद्धांत की कलात्मक व बौद्धिक और आत्मसंतोषी गतिविधियों के विशुद्ध, दोषरहित जगत की रचना किए बिना नहीं रचा जा सकता। कहने का मतलब यह है कि वाणिज्यिक संबंधों का ऐसा विज्ञान, जो कि उस व्यवस्था की आधारशिला- निजी संपत्ति, मुनाफा, उजरती मजदूरी आदि- को विवाद से परे मानता है, जिसका वह विश्लेषण करना

चाहता है, वह आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र का विज्ञान तो नहीं ही है; उसने व्यवहारों के संकुचन का ऐसा सामान्य विज्ञान गढ़ने की संभावना को भी अवरुद्ध किया हुआ है, जिसमें वाणिज्यिक विनिमय को उसके सारे रूपों में देखा जा सके।

ये बड़ी दिलचस्प बात है कि इस प्रकार की “आत्मश्लाघी गणनाओं के बर्फीले पानी” (और विज्ञान) से जो व्यवहार व संपदाएं बचा ली गई हैं, वे प्रभुत्वशाली वर्ग का लगभग एकाधिकार बन चुकी हैं- मानो अर्थवाद हर चीज को केवल इसलिए अर्थशास्त्र के रूप में संकुचित करने में सक्षम था क्योंकि जिस पर वह अनुशासन आधारित है, उसमें संकुचन ही सुरक्षा की हकदार हर चीज को प्रदूषक संकुचन से बचा सकता है। यदि अर्थशास्त्र का संबंध केवल ऐसे व्यवहारों से है, जिनका प्रधान और एकमात्र संकुचित आर्थिक हित ऐसी वस्तुओं के उत्पादन से सधता है जिनको प्रत्यक्षतः और फौरन पैसे में रूपांतरित किया जा सकता है (यानी जो उन्हें मापयोग्य बनाता है), तो बुर्जुवा उत्पादन और विनिमय का जगत एक अपवाद बन जाता है और वह खुद को रुचिहीनता की परिधि के रूप में देख और प्रस्तुत कर सकता है। इसे दोहराने की जरूरत नहीं है कि अमूल्य चीजों का भी मूल्य होता है और कुछ खास व्यवहारों व वस्तुओं को पैसे में रूपांतरित कर देने की भारी कठिनाई का कारण केवल यही है कि यह रूपांतरण उन अपेक्षाओं में ही निषिद्ध था, जो उन व्यवहारों व वस्तुओं को जन्म देती हैं। यह अर्थव्यवस्था के निषेध (Verneinung) के अलावा और कुछ नहीं है। व्यवहारों के संकुचन का एक सामान्य विज्ञान, जो ऐसे व्यवहारों की समग्रता का पुनर्हस्तगतकरण करने में सक्षम है जो वस्तुगत रूप से आर्थिक हैं परंतु सामाजिक रूप से आर्थिक के रूप में मान्यता से वंचित हैं और जिन्हें धोखे से भी समूचे श्रम या और सटीक शब्दों में कहें तो *मंगल वचनों* की लागत के बिना संपन्न नहीं किया जा सकता है, उसको पूंजी और मुनाफे को लाजिमी तौर पर उनके सारे रूपों में पकड़ना होगा और ऐसे कानून ईजाद करने होंगे जिनकी मार्फत पूंजी (या सत्ता, जिसका यही अर्थ होता है) के विभिन्न रूप एक-दूसरे में रूपांतरित होते हैं।

पूंजी किस क्षेत्र में कार्य करती है और उस क्षेत्र में पूंजी की कुशलता के लिए जो कमोबेश महंगे रूपांतरण अनिवार्य होते हैं, उनकी लागत पर वह खुद को तीन आधारभूत रूपों में प्रस्तुत कर सकती है। एक, वह अपने-आपको *आर्थिक पूंजी* के रूप में प्रस्तुत कर सकती है, जिसको तत्काल और प्रत्यक्ष रूप से धन में रूपांतरित किया जा सकता है और जिसे संपत्ति अधिकारों के रूप में संस्थागत रूप दिया जा सकता है। दो, वह खुद को *सांस्कृतिक पूंजी* के रूप में प्रस्तुत कर सकती है जिसे कुछ खास परिस्थितियों में आर्थिक पूंजी में रूपांतरित

किया जा सकता है और शैक्षिक योग्यताओं के रूप में संस्थागत किया जा सकता है। तीन, वह खुद को सामाजिक पूंजी के रूप में प्रस्तुत कर सकती है जो ऐसे सामाजिक दायित्वों (“संपर्कों”) से बनी होती है, जिनको खास परिस्थितियों में आर्थिक पूंजी में रूपांतरित किया जा सकता है और जिन्हें कुलीन वर्ग के विशेषाधिकारों के रूप में संस्थागत रूप दिया जा सकता है।

सांस्कृतिक पूंजी

सांस्कृतिक पूंजी के तीन रूप हो सकते हैं। ये तीन रूप इस प्रकार हैं : मूर्त (embodied) अवस्था, यानी मस्तिष्क और देह की दीर्घकालिक अभिरुचियों के रूप में; वस्तुकृत (objectified) रूप, यानी सांस्कृतिक उत्पादों (तस्वीरों, पुस्तकों, शब्दकोशों, उपकरणों, मशीनों आदि) के रूप में जो कि इन सिद्धांतों, प्रब्लमेटिक्स आदि की समालोचना या इन सिद्धांतों का साकार रूप या सूत्र होते हैं; तथा संस्थागत (institutionalised) रूप, जो कि वस्तुकरण का एक ऐसा रूप है जिसको औरों से लाजिमी तौर पर अलग देखा जाना चाहिए क्योंकि, जैसा कि हम शैक्षिक योग्यताओं के मामले में देखेंगे, यह उस सांस्कृतिक पूंजी में भी निहायत मौलिक गुण पैदा कर देता है, जिसकी सुरक्षा का इसे साधन माना जाता है।

मेरे तर्क में स्वयंसिद्धि (axiomatisation) की चेष्टा से जो अटल सत्य जैसा भाव पैदा हो रहा है उससे गुमराह होने की जरूरत नहीं है। मेरे शोध के प्रारंभिक दौर में सांस्कृतिक पूंजी का विचार मेरे लिए एक ऐसी सैद्धांतिक परिकल्पना के रूप में सामने आया था जिसने अकादमिक सफलता/विफलता के आधार पर अलग-अलग सामाजिक वर्गों से आने वाले बच्चों की असमान शैक्षिक सफलताओं को समझने में मदद दी, यानी इस बात को समझने का जरिया मुहैया कराया कि विभिन्न वर्गों और समुदायों के बच्चे अकादमिक बाजार में किस तरह के अलग-अलग लाभ प्राप्त कर सकते हैं और इस बात का अलग-अलग वर्गों और समुदायों के बीच सांस्कृतिक पूंजी के वितरण से क्या संबंध है। यह प्रस्थान बिंदु सहज ज्ञान (जो कि अकादमिक सफलता या विफलता को स्वाभाविक अभिरुचियों का परिणाम मानता है) और मानव पूंजी सिद्धांतों, दोनों में अंतर्निहित पूर्व-मान्यताओं के साथ एक विच्छेद को इंगित करता है। अर्थशास्त्रियों को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने शैक्षिक निवेश और आर्थिक निवेश (और उसके उदय) से संबंधित मुनाफे की दरों के बीच संबंध के सवालों पर विचार किया है। परंतु गौर करने की बात है कि जब वे बौद्धिक या शैक्षिक निवेश के परिणामों को मापने का प्रयास करते हैं तो केवल मौद्रिक निवेशों और मुनाफों या केवल ऐसे रूपों पर ही ध्यान दे पाते हैं जिनको सीधे पैसे में रूपांतरित

किया जा सकता है, जैसे स्कूली शिक्षा की लागत और पढ़ाई में लगे समय का नकद मूल्य। वे इस बात की व्याख्या नहीं कर पाते कि विभिन्न लोग या विभिन्न सामाजिक वर्ग अपने संसाधनों का कितना-कितना अनुपात आर्थिक निवेश और सांस्कृतिक निवेश में लगाते हैं क्योंकि ये अर्थशास्त्री मुनाफे के उन भिन्न अवसरों की संरचना की व्यवस्थागत व्याख्या को नजरअंदाज कर देते हैं जो विभिन्न बाजारों में इन कर्ताओं या वर्गों को अपनी संपदाओं की मात्रा और उनके विन्यास के फलस्वरूप मिलते हैं (विशेष रूप से देखें, बेकर 1964 बी)। इसके अतिरिक्त, वे शैक्षिक निवेश रणनीतियों को सारी शैक्षिक रणनीतियों और पुनरुत्पादन रणनीतियों की व्यवस्था के साथ जोड़कर देखने में विफल हो जाते हैं इसलिए एक अनिवार्य विरोधाभास के रूप में, अपरिहार्य रूप से सर्वाधिक प्रच्छन्न और सामाजिक रूप से सर्वाधिक निर्णयकारी शैक्षिक निवेश, यानी सांस्कृतिक पूंजी के घरेलू संचरण पर भी ध्यान नहीं दे पाते। शैक्षिक योग्यता और शैक्षिक निवेश के संबंधों के उनके अध्ययनों से पता चलता है कि वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि सामर्थ्य या प्रतिभा अपने-आपमें समय और सांस्कृतिक पूंजी के निवेश का उत्पाद होती है (बेकर 1964 ए, पृष्ठ 63-66)। आश्चर्य की बात नहीं है कि जब वे शैक्षिक निवेश के लाभों के मूल्यांकन का प्रयास करते हैं तो केवल पूरे समाज के स्तर पर शैक्षिक व्यय की लाभोत्पादकता, यानी “सामाजिक लाभ दर” या “राष्ट्रीय उत्पादकता पर प्रभावों की दृष्टि से शिक्षा के सामाजिक लाभों” पर ही विचार कर पाते हैं (बेकर 1964 बी, पृष्ठ 121, 155)। शिक्षा के प्रयोगों की यह संकीर्ण उपयोगितावादी परिभाषा इस बात को नजरअंदाज कर देती है कि शिक्षा व्यवस्था सांस्कृतिक पूंजी के वंशानुगत संचरण को मान्यता देकर सामाजिक संरचना के पुनरुत्पादन में भी कितना भारी योगदान देती है। अपने मानवतावादी अभिप्रायों के बावजूद मानव पूंजी की परिभाषा शुरू से ही अर्थवाद के परे नहीं जा पाती और दूसरी बातों के अलावा इस बात को भी नजरअंदाज कर देती है कि शैक्षिक क्रियाओं से मिलने वाले शैक्षिक लाभ परिवार द्वारा अब तक निवेश की गई सांस्कृतिक पूंजी से तय होते हैं। इसके अलावा, शैक्षिक योग्यता के आर्थिक व सामाजिक लाभ सामाजिक पूंजी पर निर्भर करते हैं और यह पूंजी भी वंशानुगत होती है और उसका प्रयोग सांस्कृतिक पूंजी को पुष्ट करने के लिए किया जा सकता है।

मूर्त अवस्था सांस्कृतिक पूंजी के ज्यादातर गुणों को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि अपने आधारभूत रूप में सांस्कृतिक पूंजी देह से संबंधित है और दैहीकरण/मूर्तकरण की पूर्वापेक्षा से बंधी रहती है। मूर्त अवस्था यानी संस्कृति, संवर्धन, आध्यात्मिक उन्नति

के रूप में सांस्कृतिक पूंजी का संचय मूर्तकरण, समावेशन की प्रक्रिया से पैदा होता है, जो उपदेशों के जरिए और सम्मिलन के श्रम में निहित होने के चलते समय लेता है; यह ऐसा समय है जो निवेशक को खुद, व्यक्तिगत रूप से निवेश करना पड़ता है। एक गठीली देह या संघटन अर्जित करने की तरह इसे उतरन की तरह नहीं किया जा सकता (जिससे काम को डेलीगेट करने की संभावना या प्रभाव समाप्त हो जाते हैं)।

अर्जित करने का कार्य अपने ऊपर मेहनत करने (आत्म-परिष्कार) का कार्य है। यह एक ऐसी चेष्टा है जो एक व्यक्तिगत लागत की मांग करती है, एक ऐसा निवेश जो सबसे बढ़कर समय की मांग करता है, परंतु सामाजिक रूप से गठित मनःशक्ति (libido), यौन अंतरंगता (libido sciendi) की भी मांग करता है जिसमें तमाम संयम, त्याग और संभव बलिदान शामिल हो सकते हैं। इसका मतलब यह है कि सांस्कृतिक पूंजी के तमाम मापों में सबसे ज्यादा सटीक वे माप हैं जो किसी चीज को अर्जित करने की अवधि को अपनी कसौटी बनाते हैं- बशर्ते इसे स्कूली शिक्षा की अवधि में सीमित न कर दिया जाए और इस बात को भी ध्यान में रखा जाए कि प्रारंभिक घरेलू शिक्षा स्कूली बाजार की मांगों से अपने फासले के अनुसार उसे सकारात्मक मूल्य (समय, शुरुआत का लाभ) या एक नकारात्मक मूल्य (नष्ट हुआ समय और उसका दोहरा नुकसान क्योंकि अब इस नुकसान की भरपाई के लिए पहले से ज्यादा समय देना होगा) देती है।

यह मूर्त पूंजी, जो देह के अभिन्न अंग में रूपांतरित हो चुकी, एक आवासी का रूप ले चुकी, इस बाह्य संपदा को तत्क्षण (पैसे, संपत्ति अधिकारों या कुलीन वर्ग की पदवियों की तरह) उपहार या वसीयत, क्रय या विनिमय के जरिए हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। इसका मतलब यह है कि सांस्कृतिक पूंजी के उपयोग या दोहन से आर्थिक अथवा राजनीतिक पूंजीधारकों के लिए खास तरह की समस्याएं पैदा हो जाती हैं, चाहे वे निजी संरक्षक हों या दूसरे छोर पर विशिष्ट सांस्कृतिक सामर्थ्य से संपन्न कार्यकारी सहायकों की मार्फत काम करने वाले उद्यमी (और नए राज्य संरक्षक)। व्यक्ति की देह से इतने घनिष्ठ रूप से संबद्ध इस पूंजी को उसके धारक को खरीदे बिना कैसे खरीदा जा सकता है। अगर आप उस व्यक्ति को नहीं खरीदेंगे तो निर्भरता के छद्म से मिलने वाली वैधता के प्रभाव ही समाप्त हो जाएंगे। जब तक इस पूंजी के धारकों का संकेंद्रण नहीं किया जाएगा, तब तक इस पूंजी का संकेंद्रण कैसे किया जा सकता है- जैसा कि कुछ उपक्रम चाहते हैं- हालांकि इसके तमाम अनचाहे निहितार्थ हो सकते हैं ?

सांस्कृतिक पूंजी को किसी सुनियोजित वैचारीकरण के अभाव में और फलस्वरूप खासा अचेत रूप से अवधि, समाज और सामाजिक वर्ग के अनुसार अलग-अलग हद तक अर्जित किया जा सकता है। यह पूंजी हमेशा अर्जन की सर्वाधिक प्रारंभिक परिस्थितियों की निशानियां लेकर चलती है, जो अपने कमोबेश प्रत्यक्ष चिह्नों (जैसे किसी वर्ग या क्षेत्र में उच्चारण की विशिष्टताएं) से अपना विशिष्ट मूल्य निर्धारित करने में मदद देती है। इस पूंजी को एकल कर्ता की अर्जन क्षमताओं से अधिक सीमा तक संचित नहीं किया जा सकता; यह अपने वाहक के साथ ही नष्ट होने लगती है और अंततः खत्म हो जाती है (उसकी जैविक क्षमता, स्मृति आदि के साथ)। क्योंकि यह पूंजी संबंधित व्यक्ति से उसके जैविक अस्तित्व के साथ नाना रूपों में जुड़ी रहती है और वह एक ऐसे आनुवांशिक संचरण के तहत चलती है जो हमेशा बेहद प्रच्छन्न या यहां तक कि अदृश्य रहता है, इसलिए यह यूनानी न्यायविदों द्वारा उत्तराधिकार में मिली संपत्ति (ta patroa) और अर्जित संपत्ति (epikteta) यानी व्यक्ति द्वारा अपने उत्तराधिकार में जोड़ दी गई संपत्तियों के बीच किए जाने वाले पुराने और स्थापित फर्क की अवहेलना करती है। इस तरह यह पूंजी जन्मजात संपत्ति की प्रतिष्ठा और अर्जन के गौरव, दोनों को आपस में जोड़ देती है। क्योंकि उसके संरचन और अर्जन की सामाजिक परिस्थितियां आर्थिक पूंजी के मुकाबले ज्यादा प्रच्छन्न रहती हैं, इसलिए वह सांकेतिक पूंजी के रूप में ही काम करती है यानी उसे पूंजी के रूप में मान्यता नहीं मिलती और उसे वैध सामर्थ्य के रूप में (अ) मान्यता का प्रभाव पैदा करने वाली सत्ता के रूप में मान्यता मिलती है, यानी वैवाहिक बाजार और उन सारे बाजारों में मान्यता मिलती है, जहां आर्थिक पूंजी को पूरी तरह मान्यता नहीं दी जाती है, चाहे विशद कला संग्रहों या भव्य सांस्कृतिक आधारशिलाओं के रूप में संस्कृति का मामला हो या मितव्ययता व उपहार की अर्थव्यवस्था से लैस सामाजिक कल्याण का मामला हो। इसके अलावा, विशिष्टता का यह विशेष सांकेतिक तर्क विशद सांस्कृतिक पूंजी के स्वामियों को भौतिक और सांकेतिक लाभ भी प्रदान करता है। कोई भी सांस्कृतिक सामर्थ्य (जैसे, निरक्षरों के बीच रहने वाले के लिए पढ़ सकने की सामर्थ्य) सांस्कृतिक पूंजी के वितरण में अपनी स्थिति के चलते एक दुर्लभता मूल्य भी पैदा कर लेती है और अपने स्वामी को विशिष्टता की हैसियत/लाभ प्रदान करती है। कहने का मतलब यह है कि दुर्लभ सांस्कृतिक पूंजी को वर्ग-विभाजित समाजों में लाभ में जो हिस्सा मिलता है, वह अंतिम विश्लेषण में इस तथ्य पर आधारित होता है कि सभी वाहकों के पास अपने बच्चों की शिक्षा को जारी रखने के आर्थिक और सांस्कृतिक साधन श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन के लिए न्यूनतम आवश्यक साधनों

से अधिक नहीं होते और इस श्रम-शक्ति को किसी भी दिए हुए क्षण में सबसे कम महत्त्व मिलता है।

इस तरह वस्तुकृत अवस्था में संचित श्रम के उत्पादकों, जो कि संबंधित वाहक के नियंत्रण में होता है, हस्तगत करने के साधनों के अर्थ में पूंजी अपनी वास्तविक कार्यकुशलता के लिए संचित और वस्तुपरक रूप में उपलब्ध संसाधनों के हस्तगतकरण के साधनों के वितरण के स्वरूप पर निर्भर करती है; तथा एक कर्ता और उपलब्ध वस्तुकृत संसाधनों के हस्तगतकरण के संबंध और लिहाजा उनसे पैदा होने वाले मुनाफे के हस्तगतकरण के संबंध उस व्यक्ति और समान वस्तुओं के लिए होड़ में लगी पूंजी के दूसरे स्वामियों के बीच प्रतिस्पर्धा के संबंधों से निर्धारित होते हैं, जिनमें दुर्लभता- और उसके जरिए सामाजिक मूल्य- पैदा होते हैं। उस क्षेत्र की संरचना, यानी पूंजी का असमान वितरण पूंजी के विशिष्ट प्रभावों का स्रोत होता है, यानी लाभ के हस्तगतकरण और उस क्षेत्र के संचालन के नियमों को थोपने की शक्ति पूंजी व उसके पुनरुत्पादन के लिए सर्वाधिक अनुकूल होती है।

परंतु, सांस्कृतिक पूंजी की सांकेतिक कुशलता का सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्धांत, निस्संदेह, उसके संचरण के तर्क में निहित होता है। एक तरफ तो वस्तुकृत सांस्कृतिक पूंजी के हस्तगतकरण की प्रक्रिया और ऐसा करने के आवश्यक समय की मात्रा मुख्य रूप से पूरे परिवार में- (अन्य चीजों के अलावा) सामान्यीकृत दिशा प्रभाव और निहित संचरण के सारे रूपों- मूर्त सांस्कृतिक पूंजी पर निर्भर करती है। दूसरी ओर तमाम तरह की उपयोगी सांस्कृतिक पूंजी के तीव्र, सुगम संचय की पूर्वशर्त के रूप में सांस्कृतिक पूंजी का प्रारंभिक संचय सबसे पहले, बिना विलंब के, बिना समय गंवाए केवल उन परिवारों की संतानों के लिए शुरू होता है, जिनके पास शक्तिशाली सांस्कृतिक पूंजी होती है। इस मामले में संचय की अवधि समाजीकरण की पूरी अवधि में फैली रहती है। इसका अर्थ यह है कि सांस्कृतिक पूंजी का संचरण निस्संदेह पूंजी के वंशानुगत संचरण का श्रेष्ठतम प्रच्छन्न रूप है और इसीलिए पुनरुत्पादन रणनीतियों के तंत्र में उसको आनुपातिक रूप से सर्वाधिक महत्त्व मिलता है क्योंकि संचरण के प्रत्यक्ष, गोचर रूप ज्यादा नियंत्रित और चौकसी के भीतर रहते हैं।

इस बात को फौरन देखा जा सकता है कि आर्थिक और सांस्कृतिक पूंजी के बीच जो संबंध है वह अर्जन के लिए आवश्यक समय से तय होता है। परिवार के पास मौजूद सांस्कृतिक पूंजी में फर्क से सबसे पहले इस बात पर फर्क पड़ता है कि किसी व्यक्ति के जीवन में किस उम्र में संचरण और संचय का कार्य शुरू होता है- यहां अपवादस्वरूप ये देखा जा सकता है कि किसी के पास कुल कितना लंबा जीवन है

और अधिकतम सांस्कृतिक पूंजी को विकसित करने के लिए उसके पास अधिकतम खाली समय कितना है और उसके पास इस प्रकार परिभाषित होने वाली क्षमता में फर्क आता है कि वह अर्जन की लंबी प्रक्रिया में विशेष सांस्कृतिक अपेक्षाओं को किस हद तक पूरा कर सकता है। इसके अलावा, कोई व्यक्ति अपनी अर्जन प्रक्रिया को कितना लंबा खींच सकता है, वह अवधि इस बात पर निर्भर करती है कि परिवार उसे कितना खाली समय दे सकता है, यानी उसे आर्थिक बंधनों से आजाद समय कितना दे सकता है जो कि प्रारंभिक संचय के लिए पूर्व-शर्त होता है (वह समय जिसका एक अवरोध के रूप में मूल्यांकन किया जा सकता है और जिसकी भरपाई की जानी है)।

वस्तुकृत अवस्था में सांस्कृतिक पूंजी के बहुत सारे ऐसे गुण होते हैं जिनको सांस्कृतिक पूंजी की मूर्त अवस्था के साथ संबंधों के आधार पर ही परिभाषित किया जा सकता है। भौतिक वस्तुओं और लेखन, चित्रकला, स्मारक, उपकरण आदि माध्यमों के रूप में वस्तुकृत सांस्कृतिक पूंजी अपनी भौतिकता में संचरणशील होती है। उदाहरण के लिए, पेंटिंग्स के एक संकलन को आर्थिक पूंजी की तरह संचरित किया जा सकता है। परंतु इसमें जो चीज संचरणशील है, वह केवल कानूनी स्वामित्व है न कि (या अनिवार्य रूप से नहीं) विशिष्ट हस्तगतकरण के लिए आवश्यक पूर्व-शर्त यानी साधनों का स्वामित्व या किसी पेंटिंग का “उपभोग” या किसी मशीन का इस्तेमाल करना जो कि मूर्त पूंजी के अलावा और कुछ नहीं होता, ये संचरण के उन्हीं नियमों के अधीन होता है।

सांस्कृतिक वस्तुओं को भौतिक और सांकेतिक, दोनों तरह से हस्तगत किया जा सकता है। भौतिक हस्तगतकरण के लिए आर्थिक पूंजी और सांकेतिक हस्तगतकरण के लिए सांस्कृतिक पूंजी पूर्व-शर्त होती है। इसका मतलब यह है कि उत्पादन साधनों के स्वामी को या तो मूर्त पूंजी को हस्तगत करने का तरीका ढूंढना होगा, जो कि खास तरह के हस्तगतकरण की पूर्व-शर्त है या इस पूंजी के धारकों की सेवाएं अर्जित करने का रास्ता ढूंढना होगा। मशीनों को अपने नियंत्रण में लेने के लिए उसे केवल आर्थिक पूंजी की जरूरत पड़ती है। उनको हस्तगत करने और निर्धारित उद्देश्यों के लिए उनका प्रयोग करने (जो उनमें निहित वैज्ञानिक या तकनीकी किस्म की सांस्कृतिक पूंजी से परिभाषित होते हैं) के लिए उसके पास व्यक्ति के रूप में या ऐवजी के रूप में मूर्त सांस्कृतिक पूंजी तक अनिवार्य पहुंच होनी चाहिए। निस्संदेह, यह कैडरों (कार्यकारियों और इंजीनियरों) की उभयचर/मिश्रित अवस्था का आधार होता है। यदि इस बात पर जोर दिया जाए कि वे उत्पादन के जिन साधनों का प्रयोग करते हैं,

वे उनके स्वामी (ठोस आर्थिक अर्थ में) नहीं हैं और वे खुद केवल अपनी सांस्कृतिक पूंजी से पैदा होने वाली सेवाओं व उत्पादों के विक्रय का लाभ प्राप्त करते हैं, तो उन्हें अधीनस्थ समूहों में श्रेणीबद्ध किया जाएगा। यदि इस बात पर जोर दिया जाता है कि वे अपना लाभ किसी खास तरह की पूंजी से अर्जित करते हैं तो उन्हें प्रभुत्वशाली समूह में श्रेणीबद्ध किया जाएगा। यहां हर चीज इस बात की ओर संकेत कर रही है कि जैसे-जैसे उत्पादन के साधनों में समायी सांस्कृतिक पूंजी (और इसके साथ ही उसके हस्तगतकरण के साधनों को हासिल करने के लिए आवश्यक मूर्तकरण की अवधि) बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे सांस्कृतिक पूंजी के धारकों की सामूहिक शक्ति भी बढ़ने की ओर प्रवृत्त होती है- बशर्ते पूंजी की प्रभुत्वशाली किस्म (आर्थिक पूंजी) के धारक सांस्कृतिक पूंजी धारकों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा पैदा करने में सक्षम न हों (वैसे भी वे अपनी परिस्थितियों से ही प्रतिस्पर्धा की दिशा में प्रवृत्त होते हैं, वे परिस्थितियां जिनमें उनका चयन व प्रशिक्षण होता है, विशेष रूप से शैक्षिक और भर्ती प्रतिस्पर्धाओं के तर्क के द्वारा)।

अपनी वस्तुकृत अवस्था में सांस्कृतिक पूंजी खुद को एक स्वायत्त, समंजित जगत के सारे बाहरी लक्षणों के साथ प्रस्तुत करती है जो भले ही ऐतिहासिक क्रियाओं का उत्पाद हो, मगर जिसके अपने नियम होते हैं और ये नियम व्यक्तिगत इच्छाओं के आर-पार फैले होते हैं और उन्हें इस बात में सीमित नहीं किया जा सकता कि कोई कर्ता या कर्ताओं का समूह क्या और कितना अर्जित कर सकता है (यानी उन्हें प्रत्येक कर्ता या सारे कर्ताओं में निहित मूर्त सांस्कृतिक पूंजी में सीमित नहीं किया जा सकता)। यहां इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि यह पूंजी सांकेतिक और भौतिक रूप से सक्रिय पूंजी के रूप में विद्यमान रहती है। यह तभी प्रभावी पूंजी का रूप लेती है जब उसे कर्ताओं द्वारा हस्तगत किया जाता है और वे उसका सांस्कृतिक उत्पादन के क्षेत्र (कलात्मक क्षेत्र, वैज्ञानिक क्षेत्र आदि) में चलने वाले संघर्षों में एक हथियार और दांव के रूप में क्रियान्वयन और निवेश करते हैं और इन क्षेत्रों के परे सामाजिक वर्गों के क्षेत्र में- उन संघर्षों में क्रियान्वित व निवेश करते हैं, जहां कर्ताओं के पास ताकत आती है और वे वस्तुकृत पूंजी पर अपनी महारत के अनुपात में और क्रमशः अपनी मूर्त पूंजी की सीमा के अनुपात में मुनाफा अर्जित करते हैं।

संस्थागत अवस्था अकादमिक योग्यताओं के रूप में सांस्कृतिक पूंजी का वस्तुकरण इस पूंजी को उन कुछ गुणों से मुक्त कर देता है, जो उसे इस तथ्य से मिलते हैं कि मूर्त पूंजी के रूप में वाहक के जैविक अस्तित्व से ही उसका अस्तित्व बंधा रहता है। यही वस्तुकरण

स्वाध्यायी व्यक्ति की पूंजी और कानूनी रूप से गारंटी प्राप्त योग्यताओं द्वारा अकादमिक रूप से स्वीकृत सांस्कृतिक पूंजी के बीच फर्क पैदा करता है। स्वाध्यायी व्यक्ति की पूंजी का किसी भी समय प्रयोग किया जा सकता है या यहां तक कि दरबारी की सांस्कृतिक पूंजी का भी जो कि उच्चतर समाज के विनिमयों के बाजार में अस्थिर मूल्य वाला केवल अपरिभाषित लाभ ही दे सकती है, जबकि अकादमिक रूप से स्वीकार्य सांस्कृतिक पूंजी वाहक की देह से औपचारिक स्तर पर स्वतंत्र रहती है। अकादमिक योग्यता के सहारे, धारक को संस्कृति के विषय में परंपरागत, स्थिर, वैधानिक मान्यता प्राप्त सांस्कृतिक सामर्थ्य के प्रमाण पत्र के सहारे सामाजिक कीमियागिरी एक ऐसी सांस्कृतिक पूंजी प्रदान करती है, जो अपने वाहक से और यहां तक कि उसके पास किसी भी समय मौजूद सांस्कृतिक पूंजी से भी सापेक्षतः स्वायत्त होती है। यह अकादमिक योग्यता सामूहिक जादू से ठीक उसी तरह सांस्कृतिक पूंजी को संस्थागत रूप दे देती है जिस तरह, मालें-पॉटी के शब्दों में, जीवित मनुष्य-विलाप के अनुष्ठान के जरिए अपने मृतकों का संस्थाकरण कर देते हैं। यहां सिर्फ प्रतिस्पर्धी भर्ती परीक्षाओं पर विचार करना ही काफी है जो सामर्थ्यों/प्रदर्शनों के बीच अति-सूक्ष्मता के नैरंतर्य में से तीखी, निरपेक्ष, स्थाई असमानताएं पैदा कर देते हैं- ऐसी असमानताएं जो सफल उम्मीदवारों की सूची में अंतिम पायदान पर खड़े उम्मीदवार और विफल उम्मीदवारों की सूची में सबसे पहली पायदान पर खड़े उम्मीदवार के बीच जमीन-आसमान का फर्क पैदा कर देती है और अधिकृत रूप से मान्यता प्राप्त, गारंटीशुदा सामर्थ्य तथा साधारण सांस्कृतिक पूंजी (जिसे बार-बार खुद को सिद्ध करना पड़ता है) के बीच एक आधारभूत फर्क को संस्थागत रूप दे देती है। इस मामले में आप संस्थाकरण की शक्ति के प्रदर्शनमूलक जादू-जाहिर करने और विश्वास अर्जित करने या एक शब्द में कहें तो मान्यता या अमान्यता थोपने की सत्ता के जादू को देख सकते हैं।

किसी भी कर्ता के नियंत्रण में मौजूद सांस्कृतिक पूंजी को संस्थागत मान्यता प्रदान करके अकादमिक योग्यता इन योग्यताधारकों के बीच तुलना और यहां तक कि उनके विनिमय (एक के स्थान पर दूसरे को रखने) को भी संभव बना देती है। इसके अतिरिक्त, यह मान्यता किसी दी हुई अकादमिक पूंजी के मौद्रिक मूल्य की गारंटी के जरिए सांस्कृतिक पूंजी और आर्थिक पूंजी के बीच रूपांतरण दरों को भी संभव बना देती है। आर्थिक पूंजी के सांस्कृतिक पूंजी में रूपांतरण का यह उत्पाद दूसरे योग्यताधारकों के मुकाबले किसी योग्यताधारक की सांस्कृतिक पूंजी का मूल्य निर्धारित कर देता है और इसी कसौटी पर उसका मौद्रिक मूल्य भी तय कर देता है, जिसको चुकाकर

श्रम-बाजार में उस धारक को खरीदा जा सकता है (अकादमिक निवेश का तब तक कोई अर्थ नहीं है जब तक कि उसमें निहित रूपांतरण की एक न्यूनतम वसूली का वस्तुगत आश्वासन न हो)। क्योंकि अकादमिक योग्यता से मिलने वाले भौतिक और सांकेतिक लाभ उसकी दुर्लभता पर भी निर्भर करते हैं, इसलिए जो निवेश किया गया है (समय और प्रयासों में) वह उस समय अपेक्षा के विपरीत कम लाभदायक भी सिद्ध हो सकता है, जब वह निवेश किया जा रहा था। आर्थिक पूंजी को सांस्कृतिक पूंजी में रूपांतरित करने की रणनीतियां, जो स्कूली शिक्षा में हुए विस्फोट और योग्यताओं की अति के अल्पकालिक कारकों में से एक हैं, विभिन्न प्रकार की पूंजियों द्वारा मुहैया कराए जाने वाले मुनाफे के अवसरों की संरचना में परिवर्तन से संचालित होती हैं।

सामाजिक पूंजी

सामाजिक पूंजी ऐसी वास्तविक या संभावित संपदाओं का सकल योग होता है, जो परस्पर परिचय और मान्यता के कमोबेश संस्थागत संबंधों के एक टिकाऊ नेटवर्क की सदस्यता से जुड़ा होता है- या दूसरे शब्दों में, किसी समूह की सदस्यता से जुड़ी होती है। यह नेटवर्क या समूह अपने प्रत्येक सदस्य को समूहिक स्वामित्वयुक्त पूंजी का समर्थन, एक ऐसी “विश्वसनीयता” प्रदान करता है जो उनको विभिन्न अर्थों में ऋण का अधिकारी बना देता है। संभव है ये संबंध केवल ऐसे व्यवहारिक रूप में, बौद्धिक और/या सांकेतिक विनिमयों में ही विद्यमान रहते हों, जो उन्हें बनाए रखने में मदद देते हैं। वे सामाजिक रूप से संस्थाकृत और एक साझा नाम द्वारा संबोधित भी हो सकते हैं (यह नाम किसी परिवार, वर्ग, कबीले या स्कूल, पार्टी आदि का हो सकता है) और वे असंख्य ऐसे सांस्थानिक कृत्यों द्वारा बंधे हो सकते हैं, जिनको उनके घटकों को बनाने व चलाने के लिए रचा व इस्तेमाल किया जाता है। इस मामले में वे कमोबेश विनिमयों द्वारा स्थापित और पुष्ट किए जाते हैं। अविलयी भौतिक एवं सांकेतिक विनिमयों, जिनकी स्थापना और रख-रखाव निकटता की पुनर्स्वीकृति पर आधारित होती है, पर आधारित होने के चलते उनको आंशिक रूप से भौतिक (भौगोलिक) स्थान या आर्थिक व सामाजिक स्थान में निकटता के वस्तुपरक संबंधों में संकुचित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार, किसी कर्ता के नियंत्रण वाली सामाजिक पूंजी का परिमाण इस बात पर निर्भर करता है कि वह प्रभावी तौर पर संपर्कों का कितना बड़ा नेटवर्क जुटा सकता है और उन संपर्कों की अपनी-अपनी पूंजी (आर्थिक, सांस्कृतिक या सांकेतिक) का परिमाण कितना है। इसका मतलब यह है कि हालांकि सामाजिक पूंजी को

किसी कर्ता या यहां तक कि जिनसे वह जुड़ा हुआ है उन सारे कर्ताओं की आर्थिक और सामाजिक पूंजी में भी सीमित नहीं किया जा सकता; परंतु, सामाजिक पूंजी कभी भी इससे पूरी तरह स्वतंत्र नहीं होती क्योंकि परस्पर मान्यता को संस्थाबद्ध करने वाले विनिमय इस बात पर आधारित होते हैं कि न्यूनतम वस्तुनिष्ठ समरूपता को पुनःमान्यता दी जाए चूंकि इससे उस कर्ता के पास मौजूद पूंजी पर बहुगुणक प्रभाव पड़ता है।

किसी समूह की सदस्यता से जो लाभ मिलते हैं वे उन लाभों को साकार करने वाली एकजुटता का आधार होते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि उनको सुनियोजित ढंग से या सोच-समझ कर साकार किया जाता है। यहां तक कि सीमित सदस्यता वाले क्लब जैसे समूहों में भी प्रायः ऐसा नहीं होता जबकि उनको सामाजिक पूंजी के संकेंद्रण के लिए जान-बूझकर संगठित किया जाता है ताकि संकेंद्रण में निहित बहुगुणक प्रभाव और सदस्यता के अधिकतम संभव लाभ-भौतिक लाभ, जैसे उपयोगी संबंधों से पैदा होने वाली विभिन्न प्रकार की सेवाएं, और सांकेतिक लाभ, जैसे किसी दुर्लभ, प्रतिष्ठित समूह के साथ जुड़ाव से पैदा होने वाले लाभ-अर्जित किए जा सकें।

संपर्कों के नेटवर्क का अस्तित्व स्वाभाविक या सामाजिक तौर पर भी ऐसी चिरस्थायी चीज नहीं होता जिसे शुरुआती गठन की क्रिया के जरिए हमेशा के लिए स्थापित कर दिया गया हो और जिसे परिवार समूह के मामले में कुटुंब की वंश व्यवस्था के रूप में निरूपित किया जाता हो। यह संस्थाकरण की निस्सीम चेष्टाओं का उत्पाद होता है, जिसके संस्थाकरण के अनुष्ठान- जिन्हें गलती से rites of passage अनुष्ठान कह दिया जाता है- बुनियादी क्षणों को चिह्नित करते और भौतिक या सांकेतिक लाभ सुनिश्चित करने वाले स्थायी, उपयोगी संबंधों का उत्पादन व पुनरुत्पादन करने के लिए अनिवार्य होते हैं (देखें बोर्ड्यू 1982)। कहने का मतलब यह है कि संबंधों का यह जाल व्यक्तिगत या सामूहिक निवेश रणनीतियों का उत्पादन होता है। ये निवेश-रणनीतियां सचेत या अचेत रूप से ऐसे सामाजिक संबंध स्थापित या पुनरुत्पादित करने के लक्ष्य पर केंद्रित होती हैं, जिनका अल्प या दीर्घ काल में प्रत्यक्ष रूप से इस्तेमाल किया जा सकता है, यानी जिनको प्रासंगिक संबंधों, यथा, मोहल्ले, कार्यस्थल, कुटुंब आधारित संबंधों में रूपांतरित किया जा सकता है जो कि अनिवार्य भी हैं और वैकल्पिक भी, यानी जिनमें स्थायी दायित्व भावनात्मक स्तर पर महसूस किया जाता (अहसान, सम्मान, दोस्ती आदि भावनाएं) या संस्थागत रूप से गारंटीशुदा (अधिकारों के रूप में) होता है। यह काम अभिषेक (consecration) की कीमियागिरी के जरिए संपन्न होता है। यह अभिषेक सामाजिक संस्थानों द्वारा

रचा गया सांकेतिक संगठन होता है (एक संबंधी- भाई, बहन, कुटुंबी आदि- या नवाब, वारिस, बुजुर्ग आदि पदवियों की स्थापना) और विनिमयों (उपहारों, वादों, स्त्रियों, आदि का विनिमय) के भीतर और उनके जरिए अंतहीन रूप से पुनरुत्पादित होता रहता है, जिनको यह संगठन प्रोत्साहित भी करता है और जो परस्पर ज्ञान व मान्यता के आधार पर पैदा होते हैं और उसे जन्म देते हैं। विनिमय की प्रक्रिया विनिमयित चीजों को मान्यता के चिह्नों में रूपांतरित कर देती है और परस्पर मान्यता तथा उसमें निहित समूह सदस्यता की मान्यता के जरिए समूह का पुनरुत्पादन करती है। इसी तरह यह समूह की सीमाओं को पुनः पुष्ट करता है, यानी ये तय करती है कि किन सीमाओं के बाहर संघटक विनिमय- व्यापार, सहजीवन या विवाह- नहीं हो सकता। इस तरह समूह के प्रत्येक सदस्य को उस समूह की सीमाओं का प्रहरी बना दिया जाता है : क्योंकि प्रवेश की कसौटी की परिभाषा हर नए प्रवेश में दांव पर होती है इसलिए वह किसी प्रकार के दूषित गठजोड़ के जरिए वैध विनिमय की सीमाओं में संशोधन के द्वारा समूह को भी संशोधित/परिवर्तित कर सकता है। लिहाजा, यह तर्कसंगत बात है कि ज्यादातर समाजों में विवाह की तैयारी और आयोजन को पूरे समूह का काम माना जाता है, न कि केवल प्रत्यक्ष रूप से संबंधित कर्ताओं का। किसी परिवार, कुटुंब या क्लब में नए सदस्यों के प्रवेश के जरिए समूह की पूरी परिभाषा, यानी उसके जुमाने, सीमाएं और उसकी पहचान, सब कुछ दांव पर लग जाता है, सब कुछ पुनर्परिभाषा, बदलाव, मिलावट की आशंका में घिर जाता है। आधुनिक समाजों की तरह जब परिवार भी ऐसे विनिमयों की स्थापना पर एकाधिकार खो देते हैं, जो सामाजिक रूप से स्वीकार्य अथवा अस्वीकार्य विवाह जैसे स्थायी संबंधों को जन्म दे सकते हैं तो भी वे अहस्तक्षेपवाद के तर्क में रहते हुए इन विनिमयों को ऐसी संस्थाओं के जरिए नियंत्रित करते रह सकते हैं, जो वैध विनिमयों को पुरस्कृत करने और अवैध विनिमयों को दंडित व बेदखल करने के लिए ऐसे अवसर (रैली, समुद्री पर्यटन, शिकार, दावत, स्वागत समारोह, आदि), स्थान (श्रेष्ठ मोहल्ले, चुनिंदा विद्यालय, क्लब आदि) या व्यवहार (अच्छे खेल, पार्लर क्रीड़ाएं, सांस्कृतिक उत्सव आदि) मुहैया कराते हैं जो जाहिरा तौर पर आकस्मिक ढंग से लोगों को अस्तित्व के अर्थ में और समूह के स्थायित्व के रूप में अधिकतम संभव ढंग से परस्पर साथ लाते हैं।

सामाजिक पूंजी के पुनरुत्पादन के लिए मेल-जोल की निरंतर चेष्टाओं, विनिमय की निरंतर शृंखलाओं की जरूरत होती है, जिनमें मान्यता/वैधता को बार-बार पुष्टि और पुनर्पुष्टि के दौर से गुजरना पड़ता है। इस काम के लिए बहुत सारे समय और ऊर्जा की और इस तरह प्रत्यक्ष

या अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक पूंजी की जरूरत होती है, जो कि तब तक लाभदायक या यहां तक कि विचार योग्य भी नहीं होता जब तक कि हम उसमें एक निश्चित सामर्थ्य (वंश संबंधों व यथार्थ संपर्कों तथा उनके उपयोग का ज्ञान आदि) और इस सामर्थ्य को अर्जित व कायम रखने के लिए एक अर्जित क्षमता का निवेश न करें जो कि अपने-आपमें इस पूंजी का अभिन्न अंग होती है। यह उन कारकों में से एक है जो इस बात की व्याख्या करते हैं कि सामाजिक पूंजी को संचित करने और बनाए रखने के इस श्रम की लाभोत्पादकता पूंजी के आकार के अनुपात में क्यों बढ़ती जाती है। क्योंकि किसी संबंध से निकलने वाली सामाजिक पूंजी इस कदर विशाल होती है कि जो व्यक्ति उसका लाभ लेता है उसके पास बेहिसाब पूंजी आ जाती है (मुख्य रूप से सामाजिक, परंतु अक्सर सांस्कृतिक और यहां तक कि आर्थिक पूंजी भी) और वह किसी महान/विख्यात नाम से चिह्नित वंशानुगत सामाजिक पूंजी का स्वामी होता है, इसलिए यह पूंजी सारे पारिस्थितिक संबंधों को स्थायी संपर्कों में रूपांतरित करने में सक्षम होती है। ऐसे व्यक्तियों की सामाजिक पूंजी के कारण ही उनकी पूछ होती है और, क्योंकि वे जाने-माने होते हैं इसलिए, वे ख्याति के हकदार हो जाते हैं (“मेरे उससे बड़े अच्छे ताल्लुकात हैं”); उन्हें अपने सारे ‘परिचयों’ से ‘जान-पहचान बढ़ाने’ की जरूरत नहीं होती; वे जितने लोगों को जानते हैं, उससे कहीं ज्यादा लोग उन्हें जानते हैं और मौका पड़ने पर उनका मेल-जोल बहुत उत्पादनशील सिद्ध होता है।

प्रत्येक समूह के पास प्रत्यायोजन (delegation) के कमोबेश संस्थागत रूप होते हैं, जो उसे अपनी समूची सामाजिक पूंजी को किसी एक वाहक या वाहकों के एक लघु समूह के हाथों में संकेद्रित करने और इस कूटनीतिज्ञ को सामूहिक स्वामित्व आधारित उसी पूंजी की सहायता से *plena potestas agendi et loquendi*, का, समूह का प्रतिनिधित्व करने, उसकी ओर से बोलने व कदम उठाने आदि का अधिकार देते हैं जो कि उस समूह (परिवार या राष्ट्र परंतु कई बार संगठन या पार्टी आदि भी) का आधार होती है। ऐसे वाहक या वाहकों के समूह के पास जो सत्ता होती है, वह उसके/उनके व्यक्तिगत अंशदान से कहीं बड़ी होती है। इस तरह, संस्थाकरण के सर्वाधिक प्रारंभिक स्तर पर ही परिवार के मुखिया, बुजुर्ग, सबसे बड़े व्यक्ति को चुपचाप पूरे कुनबे की ओर से बोलने के लिए एकमात्र व्यक्ति अधिकृत कर दिया जाता है। हालांकि इस मामले में छितरा हुआ प्रत्यायोजन (diffused delegation) मांग करता है कि वह बड़ा व्यक्ति सबसे दुर्बल सदस्य की प्रतिष्ठा के खतरे में पड़ जाने पर भी आगे आकर सामूहिक प्रतिष्ठा की रक्षा करने में सक्षम हो।

सामाजिक पूंजी का संकेंद्रण सुनिश्चित करने वाला संस्थागत प्रत्यायोजन भी जिम्मेदारियों की स्पष्ट व्याख्या के जरिए व्यक्तिगत लापरवाहियों के प्रभावों पर अंकुश लगाने का काम करता है और स्वीकृत प्रवक्ता को इस बात का अधिकार देता है कि वह हानिकारक सदस्यों/व्यक्तियों को निष्काशित या बिरादरी-बाहर करके पूरे समूह को बेइज्जती के गर्त में जाने से बचाता रहे।

समूह के वैध प्रतिनिधित्व पर इजारेदारी के लिए चलने वाली आंतरिक प्रतिस्पर्धा का मकसद यदि उस पूंजी के संरक्षण और संचय को खतरे में डालना नहीं है जो समूह का आधार होती है तो समूह के सदस्यों को लाजिमी तौर पर चाहिए कि वे किसी भी व्यक्ति द्वारा खुद को समूह का सदस्य घोषित करने और खासतौर से खुद को पूरे समूह का प्रतिनिधि (डेलीगेट, दूत, प्रवक्ता आदि) घोषित करने और इस तरह पूरे समूह की सामाजिक पूंजी पर कब्जा जमा बैठने के अधिकार की शर्तें व सीमाएं तय करें। कुलीन वर्ग की पदवियां या विशेषाधिकार संस्थागत सामाजिक पूंजी का सबसे परिष्कृत रूप होते हैं जो एक खास तरह के सामाजिक संबंधों को स्थायित्व प्रदान कर देते हैं। प्रत्यायोजन का एक विरोधाभास यह है कि मनोनीत वाहक पूरे समूह पर (और एक हद तक उसके खिलाफ) उसी सत्ता का इस्तेमाल करने लग सकता है, जिसको संकेंद्रित करने का समूह ने उसे अधिकार दिया था। (यह बात ऐसे सीमित मामलों में विशेष रूप से सत्य दिखाई देती है जिनमें मनोनीत वाहक उस समूह की रचना करता है जो उस वाहक की रचना करता है मगर जो केवल उस वाहक के जरिए ही अस्तित्व में रह पाता है)। प्रत्यायोजन और प्रतिनिधित्व की प्रणाली (नाटकीय और कानूनी, दोनों अर्थों में) सामाजिक पूंजी के संकेंद्रण की एक शर्त (इसके दूसरे कारण भी हैं क्योंकि इससे असंख्य, विविध, बिखरे हुए वाहकों को एक व्यक्ति के रूप में काम करने और समय व परिवेश की सीमाओं से निजात पाने में मदद मिलती है) के रूप में सामने आती है- और समूह जितना विशाल व उसके सदस्य जितने दुर्बल होंगे, यह प्रणाली उतनी ही शक्तिशाली होगी- मगर उसी में उस पूंजी के घोटाले और घपले के बीज भी छिपे होते हैं, जिसे यह प्रणाली संकेंद्रित करती है।

इस घपले के बीज इस तथ्य में छिपे होते हैं कि पूरे समूह की नुमाइंदगी का अधिकार एक स्पष्टतः चिह्नित और सबके सामने प्रत्यक्ष, ज्ञात व मान्य उपसमूह द्वारा की जा सकती है। यह उपसमूह 'बड़े लोगों' 'जाने-माने लोगों' का समूह होता है। यह संरचना कुलीन वर्ग की तर्ज पर चलती है और इस उपसमूह के सदस्य पूरे समूह की ओर से बोल सकते हैं, पूरे समूह का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं और पूरे समूह के नाम पर फैसले ले सकते हैं। यहां कुलीन व्यक्ति ही

समूह का साकार रूप बन जाता है। वह उस समूह का नाम लेकर चलता है, जिसे उसने अपना नाम दिया है (जिसके जरिए नवाब अपने समूह से जुड़ जाता है, ऐसी metonymy का सबसे बढ़िया उदाहरण वहां साथ देखा जा सकता है जहां शेक्सपियर क्लियोपेट्रा को 'यूनान' या फ्रांस के राजा को 'फ्रांस' कहने लगता है)। नवाब, उसके नाम, उसके उच्चारण से पैदा होने वाले फर्क की ही वजह से उसके समूह के सदस्य, जागीरदार और जमीन व दुर्ग-अड्डालिकाएं जानी व मानी जाने लगती हैं। 'पर्सनेलिटी कल्ट' (व्यक्ति पूजा) या पार्टियों, ट्रेड यूनियनों अथवा आंदोलनों को उनके नेता के नाम से जानने की परिघटना के बीज भी प्रतिनिधित्व के तर्क में ही छिपे होते हैं। इसमें सारे आयाम मिलकर प्रतिनिधि को प्रतिनिधित्व का, जिनको अभिव्यक्त करने की उससे अपेक्षा की जाती है, उन प्रवक्ताओं का स्थान लेने के लिए प्रेरित करते हैं। इसका कारण उसकी विशिष्टता, उसकी महानता नहीं है बल्कि उसका दूर से दिखता व्यक्तित्व ही उसकी इस सत्ता का एकमात्र न सही मगर बहुत बुनियादी हिस्सा जरूर होता है जो ज्ञान और मान्यता के तर्क में बंधी होने के चलते बुनियादी रूप से केवल एक सांकेतिक सत्ता होती है। लेकिन इसका एक कारण ये भी है कि यह प्रतिनिधि, यह चिह्न, यह प्रतीक ही समूहों का पूरा यथार्थ हो सकता है और उसको रच सकता है जिसे उसके प्रतिनिधित्व के जरिये तथा रूप में ही ठोस सामाजिक अस्तित्व प्राप्त होता है।

रूपांतरण

आर्थिक पूंजी से विभिन्न प्रकार की पूंजी को प्राप्त किया जा सकता है मगर इस प्रक्रिया में रूपांतरण की कमोबेश अच्छी-खासी लागत लगती है। उदाहरण के लिए, आपके सामने कुछ ऐसी सेवाएं और वस्तुएं हैं, जिनको आर्थिक पूंजी के जरिए आप फौरन अपनी पहुंच में ले सकते हैं। इसके लिए आपको किसी द्वितीयक लागत की जरूरत नहीं है। लेकिन, कुछ वस्तुएं या सेवाएं ऐसी होंगी जिनको आप केवल संबंधों की सामाजिक पूंजी (या सामाजिक दायित्वों) के सहारे ही हासिल कर सकते हैं और ये संबंध फौरन सक्रिय नहीं हो पाते। ये संबंध सही मौके पर सक्रिय हों, इसके लिए जरूरी है कि वे लंबे समय से स्थापित व कायम हों, मानो अपने तौर पर ही उनका महत्त्व था। इस प्रकार, उनकी उपयोगिता की अवधि के बाहर यानी मिलनसारी की लागत लाजिमी तौर पर दीर्घकालिक होती है क्योंकि एक शुद्ध और साधारण ऋण को अहसान नामक अविशिष्ट ऋण के रूप में रूपांतरित करने के लिए समय का फासला बहुत जरूरी होता है। आर्थिक विनिमय की निराशाजनक मगर संकुचित पारदर्शिता के विपरीत, जिसमें समतुल्य चीजें एक ही क्षण में इस हाथ से उस हाथ

में चली जाती हैं, सामाजिक विनिमयों की अनिवार्य संदिग्धता, जिसके लिए अमान्यता पूर्व-शर्त होती है यानी निष्ठा या विश्वासघात (आत्मभ्रम के अर्थ में) के लिए समय की ज्यादा सूक्ष्म अर्थव्यवस्था महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

लिहाजा, इस बात को समानांतर रूप से कहना होगा कि आर्थिक पूंजी बाकी सभी प्रकार की पूंजी की जड़ में होती है और कि आर्थिक पूंजी के ये रूपांतरित, प्रच्छन्न रूप कभी भी आर्थिक पूंजी की परिभाषा में पूरी तरह सिमट नहीं पाते, उनके विशिष्ट प्रभाव केवल इसी हद तक सामने आ पाते हैं कि वे इस तथ्य को किस हद तक छिपा लेते हैं कि आर्थिक पूंजी ही उनकी जड़ में है। पूंजी के क्रियाकलाप का असली तर्क, एक तरह की पूंजी से दूसरी तरह की पूंजी में रूपांतरण और उन्हें संचालित करने वाले रूपांतरण के नियम को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि आप दो विपरीत मगर समान रूप से आंशिक दृष्टियों से परे नहीं जाएंगे। इनमें एक तरफ अर्थवाद है जो मानता है कि प्रत्येक प्रकार की पूंजी को अंततः आर्थिक पूंजी में सीमित किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण इस बात की उपेक्षा करता है कि अन्य प्रकार की पूंजी की विशिष्ट प्रभावोत्पादकता किस चीज से बनती है। और दूसरी तरफ प्रतीकशास्त्र (semiology) है (अभी यह संरचनावाद, प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद या मानवशास्त्रीय पद्धति विज्ञान में दिखाई देता है) जो सामाजिक विनिमयों को संचार की परिघटना में सीमित कर देता है और अर्थशास्त्र में सार्वभौमिक संकुचन के क्रूर तथ्य को नजरअंदाज कर देता है।

ऊर्जा-संरक्षण के सिद्धांत से मिलते-जुलते एक अन्य सिद्धांत के अनुसार एक क्षेत्र के मुनाफे की भरपाई किसी दूसरे क्षेत्र की लागतों के रूप में की जाती है (इस तरह व्यवहार के अर्थशास्त्र में सामान्य विज्ञान के धरातल पर बरबादी जैसी अवधारणाओं का कोई अर्थ नहीं रहता)। सार्वभौमिक समतुल्य, सारी समतुल्यताओं की माप (सर्वाधिक व्यापक अर्थ में) श्रम समय के अलावा और कुछ नहीं होती तथा प्रत्येक मामले में सारे रूपांतरणों के जरिए सामाजिक ऊर्जा के रूपांतरण की पुष्टि इस बात से होती है कि हम उस प्रकार की पूंजी में संचित श्रम-समय और उसे एक प्रकार की पूंजी से दूसरे प्रकार की पूंजी में रूपांतरित करने के लिए आवश्यक श्रम-समय, दोनों को ध्यान में रखें।

आर्थिक पूंजी के सामाजिक पूंजी में रूपांतरण के लिए एक खास तरह के श्रम यानी समय, ध्यान, फिक्र, चिंता के प्रत्यक्षतः कृतज्ञतापूर्ण व्यय की आवश्यकता होती है, जिसे किसी उपहार को अपना महसूस करने में देखा जा सकता है। इससे विनिमय के विशुद्ध मौद्रिक ग्रहण

का रूपांतरण हो जाता है और उसी कसौटी से विनिमय का अर्थ भी अलग रूप ले लेता है। संकुचित आर्थिक दृष्टि से इस चेष्टा को निश्चय ही विशुद्ध अपव्यय माना जाएगा, मगर सामाजिक विनिमयों के तर्क के स्तर पर यह एक ठोस निवेश है जिसके लाभ लंबे दौर में मौद्रिक या किसी अन्य रूप में दिखाई देंगे। इसी तरह, यदि सांस्कृतिक पूंजी का सर्वश्रेष्ठ पैमाना यही है कि उसको अर्जित करने में कितना समय लगाया गया है तो इसका कारण यह है कि आर्थिक पूंजी को सांस्कृतिक पूंजी में रूपांतरित करने में उतने समय का व्यय आवश्यक होता है और ऐसा आर्थिक पूंजी पर नियंत्रण से ही संभव होता है। और सटीक शब्दों में कहें तो ऐसा इसलिए है क्योंकि स्वयं परिवार के भीतर संचरित होने वाली सांस्कृतिक पूंजी न केवल सांस्कृतिक पूंजी की मात्रा पर निर्भर करती है जो खुद भी समय के व्यय से संचित हुई है बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके पास उपयोग लायक समय (खासतौर से मां के पास खाली समय के रूप में) कितना है (यह आर्थिक पूंजी का परिणाम है जो औरों का समय खरीदने की योग्यता प्रदान करती है) ताकि इस पूंजी का संचरण सुनिश्चित किया जा सके और ज्यादा लंबी शिक्षा के जरिए श्रम बाजार में प्रवेश को विलंबित किया जा सके। यह एक ऐसा निवेश है जो अगर देता है तो बहुत लंबे समय बाद ही लाभ देता है।

विभिन्न प्रकार की पूंजियों की रूपांतरणीयता रूपांतरण कार्य के लिहाज से और उसमें निहित नुकसानों (सामाजिक सत्ता संबंधों की मौजूदा अवस्था में) के लिहाज से रूपांतरण के जरिए पूंजी (और सामाजिक जगत में अर्जित हैसियत) का पुनरुत्पादन सुनिश्चित करने वाली रणनीतियों का आधार होती है। विभिन्न प्रकार की पूंजियों में उनकी पुनरुत्पादनीयता या और सटीक शब्दों में कहें तो इस बात से फर्क किया जा सकता है कि उनको कितनी आसानी से संचरित किया जा सकता है, यानी किसमें कम या ज्यादा नुकसान होता है और कौन कम या ज्यादा प्रच्छन्न होती है। गौर करें कि नुकसान की दर और प्रच्छन्नता की सीमा, ये दोनों प्रायः व्युत्क्रमानुपाती होते हैं। जो चीजें आर्थिक पहलू को छिपाने में मदद देती हैं वे नुकसान के खतरे को भी बढ़ा सकती हैं (खासतौर से पीढ़ियों के बीच हस्तांतरण के मामले में)। इस तरह, विभिन्न प्रकार की पूंजियों की (प्रत्यक्ष) असाध्यता (incommensurability) विभिन्न प्रकार की पूंजियों के धारकों के बीच होने वाले विनिमयों में भारी अनिश्चितता पैदा कर देती है। इसी तरह, कमोबेश लंबे दौर में इस्तेमाल होने वाली अहसान की पूंजी (उपहारों, सेवाओं का आदान-प्रदान और मेल-जोल) के रूप में सामाजिक पूंजी पैदा करने वाले विनिमयों में हिसाब-किताब और गारंटी की घोषित अस्वीकृति के चलते इस तरह के विनिमय से पैदा

होने वाले गैर-गारंटीशुदा ऋण की मान्यता को खारिज कर दिए जाने या अकृतज्ञता का खतरा हमेशा बना रहता है। इसी तरह, सांस्कृतिक पूंजी के संरक्षण में गहरी प्रच्छन्नता से भी इस बात का घाटा रहता है (नुकसान के अंतर्निहित खतरे के अलावा) कि शैक्षिक योग्यता जो उसका संस्थागत रूप होती है, वह न तो संरक्षण योग्य होती है (किसी नवाब की उपाधि की तरह) और न ही उस पर मोल-भाव किया जा सकता है (जैसे स्टॉक और शेयर्स में किया जाता है)। और सटीक शब्दों में कहें तो सांस्कृतिक पूंजी, जिसका परिवार के भीतर विकेंद्रित और सतत संरक्षण प्रेक्षण और नियंत्रण (मानो शिक्षा व्यवस्था अपने सम्मान के लिए केवल स्वाभाविक गुणों को ही चुन रही हो) से मुक्त रह जाता है और जो पूर्ण प्रभावोत्पादकता की ओर बढ़ने लगती है, केवल शिक्षा व्यवस्था द्वारा वैधता प्राप्त करने के बाद ही यानी शैक्षिक योग्यता की पूंजी में रूपांतरित होने के बाद ही आर्थिक पूंजी के मुकाबले एक ज्यादा प्रच्छन्न मगर ज्यादा जोखिम भरे संरक्षण के दायरे में आ पाती है। जैसे-जैसे निश्चित संस्थागत बल के साथ निवेश की गई शैक्षिक योग्यता दिनों-दिन बढ़ती हैसियतों, खासतौर से प्रभुत्वशाली हैसियतों में वैध पैठ के लिए शर्त बनती जाती है वैसे-वैसे शिक्षा व्यवस्था परिवार को सत्ता व विशेषाधिकारों- और अन्य चीजों के अलावा विभिन्न लिंग व जन्म स्थितियों के बच्चों में से अपने वैध वारिसों के चयन के संरक्षण पर इजारेदारी को नष्ट करती जाती है और आर्थिक पूंजी खुद भी अपने विशेष रूपों के हिसाब से संरक्षण की अलग-अलग समस्याएं पैदा करती हैं। लिहाजा, ग्रासबी (1970) के मुताबिक, तत्काल आर्थिक सत्ता प्रदान करने और संरक्षण को सुगम बनाने वाली वाणिज्यिक पूंजी को धन में परिवर्तित कर देने से वह भू-संपत्ति (और यहां तक कि रीयल एस्टेट) से भी ज्यादा संवेदनशील हो जाती है और दीर्घकालिक व्यावसायिक घरानों की स्थापना के लिए अनुकूल नहीं रहती।

क्योंकि अधिग्रहण के बेटुकेपन का सवाल सबसे तीखे तौर पर संरक्षण की प्रक्रिया में पैदा होता है- खासतौर से उत्तराधिकार के समय पर जो कि तमाम सत्ताओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण और नाजुक क्षण होता है- इसलिए प्रत्येक पुनरुत्पादन रणनीति एक वैधीकरण की रणनीति भी होती है, जिसका मकसद निजी अधिग्रहण और पुनरुत्पादन दोनों को सुनिश्चित करना होता है। जब संचरित अधिकारों और उनके संरक्षण में निहित बेटुकेपन को उजागर करके प्रभुत्वशाली वर्ग के पुनरुत्पादन सिद्धांत के जरिए इस वर्ग को कमजोर करने वाली विध्वंसक समालोचना (जैसे, वह समालोचना जिसे प्रबोधनकालीन दार्शनिक धाराओं ने प्रकृति के नाम पर जन्म को बेहिसाब महत्त्व दिए जाने की परंपरा के खिलाफ इस्तेमाल किया था) को सत्ता व

पियरे बोर्द्यू ♦ —————

जाने-माने फ्रांसीसी समाजशास्त्री, नृत्वशास्त्री और दार्शनिक पियरे बोर्द्यू (1930-2002) ने दुनिया भर के चिन्तन को प्रभावित किया। पूंजी के रूप पर उनका चिन्तन शिक्षा जगत में बहुत प्रभावशाली रहा है।

————— ♦

विशेषाधिकारों के अधिकृत, प्रत्यक्ष संरक्षण को नियंत्रित करने पर केंद्रित संस्थागत प्रणाली (जैसे, उत्तराधिकार कानून) में समाहित कर लिया जाता है तो पूंजी के धारकों के पास ऐसी पुनरुत्पादन रणनीतियों का सहारा लेने की प्रेरणा और बढ़ती जाती है जो और प्रच्छन्न संरक्षण सुनिश्चित कर सकें। मगर पूंजी की किस्मों की रूपांतरणीयता का सहारा लेते हुए उसमें पूंजी का और अधिक नुकसान निहित होता है। इस तरह पूंजी के अधिकृत संरक्षण को जितना अवरुद्ध या बाधित किया जाता है, सांस्कृतिक पूंजी के रूप में पूंजी के प्रच्छन्न संरक्षण के प्रभाव सामाजिक संरचना के पुनरुत्पादन में उतने ही ज्यादा हानिकारक होते जाते हैं। खुद अपनी उपादेयता को पर्दे के पीछे रखते हुए पुनरुत्पादन करने वाले उपकरण के रूप में शिक्षा प्रणाली का दायरा बढ़ता जाता है और उसके साथ ही दुर्लभ पर्दों पर नियंत्रण का अधिकार देने वाली सामाजिक योग्यता में बाजार का एकीकरण भी बढ़ता है। ♦

संदर्भ

- बेकर, गैरी एस, *ए थ्योरेटिकल एण्ड एम्पीरिकल एनालिसिस विद स्पेशल रेफरेंस टू एज्युकेशन*, न्यूयॉर्क : नेशनल ब्यूरो ऑफ इकोनॉमिक रिसर्च, 1964 ए।
- ---*ह्यूमन कैपिटल*, न्यूयॉर्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964 बी।
- बोर्द्यू, पियरे, "लेस राइट्स डी'इंस्टीट्यूश", *एक्तेस दे ला रेशेरशे एन सिएन्सेस सोशियालेस*, 43 (1982) : 58-63.
- ब्रेटन, ए "दि इकॉनॉमिक्स ऑफ नेशनलिज्म", *जरनल ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी* 72 (1962) : 376-86.
- ग्रासबी, रिचर्ड, "इंग्लिश मर्चेन्ट कैपिटलिज्म इन दि लेट सेवनटीन्थ सेंचुरी : दि कॉम्पोजिशन ऑफ बिजनेस फॉरच्यूनस", *पास्ट एण्ड प्रेजेंट* 46 (1970) : 87-107।

भाषान्तर : योगेन्द्र दत्त